दशलक्षण धर्म

उत्तम क्षमादिक धर्म आतम का सहज निजभाव है।
सुख शान्ति का है हेतु जग में, मुक्ति का सु उपाव है ।।
है मूल सम्यग्दर्श, निज में लीनतामय ये धरम।
पूजूं सु भाऊँ भावना, हो पूर्ण दशलक्षण धरम ।।

दशलाक्षणीक धर्म ज्ञानमय स्वभाव है।
वर्ते निजाश्रय से सहज मिटते विभाव हैं।।

आओ भजो यह धर्म तत्त्वज्ञान पूर्वक ।
सब द्वन्द फन्द छोड़कर स्वलक्ष्य पूर्वक ।।
यह धर्म है वस्तु स्वभाव सम्प्रदाय ना।
यह धर्म है अनादि-निधन भेदभाव ना ।।
निष्काम भाव से सहज यह भावना वर्ते ।
दशलाक्षणीक धर्म नित जयवन्त प्रवर्ते ।।

दशलक्षण हैं धर्म के, धर्म नहीं दशरूप।
मोह-क्षोभ बिन धर्म है, सहजहिं साम्य स्वरूप ।।

ब्र. रवीन्द्र जी
"आत्मन्"

उत्तम क्षमा धर्म

निज अन्तर्मुख दृष्टि होवे, परमानन्दमय वृत्ति होवे ।
तहँ अनिष्ट भासे नहीं कोई, क्रोध बैर उत्पन्न न होई।।
उत्तम क्षमा सहज अविकारी, वर्ते निज पर को हितकारी ।
तत्त्वाभ्यास करो मनमाहीं, पर का दोष लखो कछु नाहीं ।।
जैसा कर्म उदय में आवे, वैसे ही संयोग सु पावे ।
तातें कर्म बंध के कारण, क्रोधादिक का करो निवारण ।।

तत्त्वदृष्टि से देखें जग में, इष्ट-अनिष्ट न कोई,
सुख-दुख-दाता-मित्र-शत्रु की, व्यर्थ कल्पना खोई ।
स्वयं-स्वयं में सहज प्रगट हो, क्षमाभाव अम्लान ।।
अहो ! दशलक्षण धर्म महान, अहो ! दशलक्षण धर्म महान ।

क्षमा भाव अविकार, स्वाश्रय से प्रकटे सुखद ।
आनन्द अपरम्पार, शत्रु न दीखे जगत में ।।

ब्र. रवीन्द्र जी
"आत्मन्"

उत्तम मार्दव धर्म

भेदज्ञान करि देखो भाई ! मिथ्यामान महादुखदाई ।
मानी के सब बैरी होवें, मानी को सब नीचा जोवें।।
जल ज्यों पत्थर में न समावे, त्यों मानी निज बोध न पावे।
स्वाभाविक निज प्रभुता देखो, ज्ञानी के जीवन को देखो ।।
अध्रुव वस्तु का मान सु त्यागो, विनयवंत हो निज में पागो।
उत्तम मार्दव आनन्द दाता, पूजो धरो सहज हो ज्ञाता।।

जो दीखे सब ही क्षणभंगुर, किसका मान करे,
पल में छोड़ हमें चल देता, अपना जिसे कहे।
ज्ञानमात्र आतम-अनुभवमय, प्रगटे मार्दव आन ।।
अहो ! दशलक्षण धर्म महान, अहो ! दशलक्षण धर्म महान ।

मार्दव भाव सुधार, निज रस ज्ञानानन्दमय।
वेदूँ निज अविकार, नहीं मान नहीं दीनता ।।

ब्र. रवीन्द्र जी
"आत्मन्"

उत्तम आर्जव धर्म

सहज सरल निज भाव पिछानो, गुप्त पाप को माया जानो।
नहीं छिपावो ताहि मिटावो, उत्तम आर्जव चित में लावो ।।
क्यों समझे ठगता औरों को, पाप बंध कर ठगता निज को।
उत्तम जिनशासन को भजकर, दुखमय छल प्रपंच को तजकर ।।
कोई बहाना नहीं बनाओ, रत्नत्रय पथ पर बढ़ जाओ।
सरल स्वभावी होकर भ्राता, उत्तम आर्जव पूजो ज्ञाता ।।

कौन किसे ठगता इस जग में, अरे! स्वयं ठग जाय,
पर्ययमूढ़ हुआ मूरख, विषयों में काल गँवाय।
भेदज्ञान कर अंतरंग में, हो आर्जव सुखखान ।।
अहो ! दशलक्षण धर्म महान, अहो ! दशलक्षण धर्म महान ।

सरल स्वभावी होय, अविनाशी वैभव लहूँ।
वांछा रहे न कोय, माया शल्य विनष्ट हो।।

ब्र. रवीन्द्र जी
"आत्मन्"

उत्तम शौच धर्म

लोभ लाभ का कारण नाहीं, व्यर्थ कलेश करता मन माहीं।
लोभी विषयी महामलीना, दर-दर ठोकर खावे दीना ।।
ज्ञेय लुब्ध अज्ञानी प्राणी, स्वानुभूति बिन दुखी अज्ञानी।
जिन उपदेश भाग्य तें पाय, अनुभव रस में तृप्त रहाय ।।
ध्याओ आतम परम पवित्रा, नाशे आश्रव अति अपवित्रा।
निर्लोभी हो पाप नशाय, उत्तम शौच जजो सुखदाय ।।

अशुचिरूप मिथ्यात्व कषायें तज, विवेक उर लावें,
व्यसन, पाप, अन्याय, अभक्ष को, त्याग पात्रता पावें।
परमशुद्ध आतम-अनुभव ही, शौचधर्म पहिचान ।।

अहो ! दशलक्षण धर्म महान, अहो! दशलक्षण धर्म महान ।

परम पवित्र स्वभाव, अविरल वर्ते ध्यान में।
नाशे सर्व विभाव, सहजहि उत्तम शौच हो।।

ब्र. रवीन्द्र जी
"आत्मन्"

उत्तम सत्य धर्म

उत्तम सत्य धर्म परधाना, सत्य समझ बिन नहीं कल्याणा।
तीर्थ प्रवर्ते सत्य वचन से, होय प्रतिष्ठा सत्य धर्म से ।।
सत्य धर्म सबको सुखदाई, झूठ दुःखमय दुर्गति दाई।
बोलो हित मित प्रिय सत् वयना, अथवा शान्त मौन ही रहना।
वस्तुस्वरूप यथार्थ पिछानो, करके स्वानुभूति श्रद्धानो।
तज परभाव रमो निज ही में, प्रगटे सत्य धर्म जीवन में।।

गर्हित निंद्य और हिंसामय, भाव वचन परिहार,
परम सत्य ध्रुव ज्ञायक जानो, अभूतार्थ व्यवहार।
ज्ञायकमय अनुभूति लीनता, सत्यधर्म अभिराम ।।
अहो ! दशलक्षण धर्म महान, अहो! दशलक्षण धर्म महान ।

सत्स्वरूप शुद्धात्म, जानूँ मानूँ आचरूँ।
प्रकटे पद परमात्म, सत्य धर्म सुखकार हो ।

ब्र. रवीन्द्र जी
"आत्मन्"

उत्तम संयम धर्म

अहो अतीन्द्रिय आनन्द आवे, विषयों में नहिं चित्त भ्रमावे ।
तज प्रमाद सब हिंसा टारी, होओ उत्तम संयम धारी ।।
करि विचार देखो मन माहीं, भोगों में सुख किंचित् नाहीं।
हस्ति मीन अलि पतंग हिरन सम, विषयों में दुख लहें मूढ़जन ।।
हो विरक्त सब पाप नशावें, धरि संयम ज्ञानी सुख पावें।
उत्तम संयम शिवपद दाता, पूजो भाओ धारो ज्ञाता ।।

अहो अतीन्द्रिय शुद्धातम, सुख-ज्ञान अतीन्द्रिय जान,
इन्द्रिय विषय-कषायें जीतो, हो हिंसा की हानि ।
आत्मलीनतामय संयम से, ही पावें शिवधाम ।।
अहो ! दशलक्षण धर्म महान, अहो! दशलक्षण धर्म महान ।

संयम हो सुखकार, अहो ! अतीन्द्रिय ज्ञानमय ।
उपजे नहीं विकार, परम अहिंसा विस्तरे ।।

ब्र. रवीन्द्र जी
"आत्मन्"

उत्तम तप धर्म

तप निज में ही हो विश्रान्त, इच्छाएँ हो जावें शान्त।
सब ही सुख की इच्छा करें, आत्मबोध बिन सुख नही लहें।।
ज्यों ज्यों भोग संयोग लहाय, आशा तृष्णा बढ़ती जाय।
इच्छा पूरी कबहुँ न होय, करो निरोध सहज तप होय ।।
बारह भेद व्यवहार कहाय, निश्चय तप सब कर्म नशाय।
अपनी-अपनी शक्ति प्रमान, उत्तम तप धारो बुधिवान ।।

अनशनादि बहिंरग प्रायश्चित, आदि अंतरंग जान,
निजस्वरूप में विश्रान्ति, इच्छा निरोध तप मान।
तप अग्नि प्रज्वलित होय तब, जलें कर्म दुःख खान ।।
अहो ! दशलक्षण धर्म महान, अहो! दशलक्षण धर्म महान ।

निज में ही विश्राम, जहाँ कोई इच्छा नहीं।
ध्याऊँ आतमराम, उत्तम तप मंगलमयी ।।

ब्र. रवीन्द्र जी
"आत्मन्"

उत्तम त्याग धर्म

दुखदायक विभाव सब त्याग, आत्म धर्म में धरि अनुराग।
चार प्रकार दान शुभ देय, त्रिविधि पात्र को दे यश लेय ।।
औषधि अभय आहार सु जान, ज्ञान दान सबमें परधान।
ज्ञान बिना भ्रमता तिहुँ लोक, आत्मज्ञान से पावे मोक्ष ।।
निज को निज पर को पर जान, ज्ञानमयी कर प्रत्याख्यान ।
सर्व दान दे हो निर्ग्रन्थ, उत्तम त्याग धरे सो सन्त ।।

सर्प काँचली मात्र तजे से, ज्यों निर्विष नहीं होय।
केवल बाह्य-त्याग से त्यों ही, सुख शान्ति नहीं होय ।।
मिथ्या राग-द्वेष को त्यागें, शुद्ध भावमय दान ।।
अहो ! दशलक्षण धर्म महान, अहो! दशलक्षण धर्म महान ।

परभावों का त्याग, सहज होय आनन्दमय।
निज स्वभाव में पाग, रहूँ निराकुल मुक्त प्रभु ।।

ब्र. रवीन्द्र जी
"आत्मन्"

उत्तम आकिंचन धर्म

हूँ मैं एक शुद्ध चिन्मात्र, अन्य न मम परमाणु मात्र ।
मोहादिक औपाधिक भाव, मेरे नहिं मैं ज्ञान स्वभाव ।।
मैं स्वभाव से आनन्द रूप, द्विविधि परिग्रह दुःख स्वरूप।
परिग्रह त्याग आकिंचन्य धर्म, धारि मुनीश्वर नाशें कर्म ।।
श्रावक भी परिमाण कराहिं, परिग्रह में किंचित् रुचि नाहिं।
यों उत्तम आकिंचन सार, पूजो धारो भव्य संभार ।।

नहिं परमाणु मात्र भी अपना, सम्यक् श्रद्धा लावें,
मूर्च्छा भाव परिग्रह दुःखमय तज, शाश्वत सुख पावें।
स्वयं-स्वयं में पूर्ण अनुभवन, आकिंचन अम्लान ।।
अहो ! दशलक्षण धर्म महान, अहो! दशलक्षण धर्म महान ।

सहज अकिंचन् रूप, नहीं परमाणु मात्र मम ।
भाऊँ शुद्ध चिद्रूप, होय सहज निर्ग्रन्थ पद ।।

ब्र. रवीन्द्र जी
"आत्मन्"

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

उत्तम ब्रह्मचर्य अविकार, पूजो धर्म शिरोमणि सार।
कामभाव दुर्गति को मूल, भव-भव में उपजावे शूल ।।
लहे न चैन करे कृत निंद्य, कामासक्त बढ़ावे बंध।
तातें शील बाढ़ नौ धार, अपनो ब्रह्म स्वरूप निहार ।।
त्यागो दुखमय इन्द्रिय भोग, पाओ ज्ञानानन्द मनोग ।
जयवन्तो ब्रह्मचर्य अनूप, धारे सो होवे शिवभूप ।।

ब्रह्मस्वरूप सहज आनन्दमय, अकृत्रिम भगवान,
दूर रहे जहँ पुण्य-पापमय, भाव कुशीली म्लान।
ब्रह्मभावमय मंगलचर्या, ब्रह्मचर्य सुखखान ।।
अहो ! दशलक्षण धर्म महान, अहो! दशलक्षण धर्म महान ।

परम ब्रह्म अम्लान, ध्याऊँ नित निर्द्वन्द्व हो ।
ब्रह्मचर्य सुख खान, पूर्ण होय आनंदमय ।।

ब्र. रवीन्द्र जी
"आत्मन्"